तृतीय वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सम्यग्ज्ञान विशारद) अभ्यास ७

❀ शुभाशीर्वाद ❀

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

❀ दिव्य कृपा ❀

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

हिंदी अनुवाद - सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड, सौ. भारती लोडाया

सौजन्य : एक श्रुतभक्त परिवार

स्तोत्र - अर्थ - रहस्य

बृहद्शांति (चालु)

अेषा शान्तिः प्रतिष्ठा-यात्रा-स्नात्राद्यवसानेषु शान्तिकलशं गृहीत्वा कुङ्कुम-चन्दन,कर्पूरागुरु- धूप-वास-कुसुमीजलि-समेतः स्नात्र-चतुष्किकायां श्री सङ्घसमेतः शुचि-शुचि-वपुः पुष्प-वस्त्र-चन्दनाभरणालङ्कृतः पुष्पमालां कण्ठे कृत्वा शान्तिमुद्घोषयित्वा, शान्तिपानीयं मस्तके दातव्यमिति ।।१९।।

-: शब्दार्थ :-

अेषा - यह
शान्तिः - शान्ति, शांतिपाठ
प्रतिष्ठा - प्रतिष्ठा
यात्रा - यात्रा
स्नात्राद्यवसानेषु - स्नात्र आदि उत्सव के अंत में
शांति कलशम् - शांति कलश
गृहित्वा - धारण करके
कुमकुम - केसर
चंदन - चन्दन
कर्पुरागुरु - कपुर तथा अगर का धूप
स्नात्र- चतुष्किकायां - स्नात्र पढाने के मंडप में
श्री संघसमेतः - श्री संघ के साथ श्रीसंघ-श्रावक-श्राविका का समुदाय)
शुचि-शुचि-वपुः - बाह्य अभ्यंतर मैल रहित
पुष्प-वस्त्र-चंदनाभरणालङ्कृत - श्वेत वस्त्र, चंदन और अलंकारो से सुशोभित होकर
पुष्प - श्वेत
पुष्पमालां कण्ठे कृत्वा - पुष्पहार को गले में धारण करके
शांतिपानीयं - शांतिजल
मस्तके दातव्यम् - मस्तक पर लगाना चाहिये
इति - ऐसा

अर्थ-संकलना : यह शांतिपाठ जिनबिंब की प्रतिष्ठा, रथयात्रा और स्नात्र वगैरह के अंत में बोलना । (उसका विधि ऐसा है कि) केसर-चंदन-कपूर, अगरु का धूप, वास और अंजलि में विविध रंगी पुष्प रखकर बांये हाथ में शांतिकलस ग्रहण करके (तथा उसपर दांया हाथ स्थापित करके) श्री संघ के साथ स्नात्र मंडल में खडा रहे । वह बाह्य-अभ्यंतर शुद्ध हुआ होना चाहिये तथा श्वेत वस्त्र, चंदन ओर अलंकारो से अलंकृत होना चाहिये । वह पुष्पहार कंठ में धारण करके शांति की उद्घोषणा करे और उद्घोषणा करने के पश्चात शांतिकलश का पानी दे, जो स्वयं तथा दूसरों ने उसे मस्तक पर लगाना चाहिये ।

मूल - (८. प्रास्ताविक - पद्यानि)

(उपजाति)

(१) नृत्यन्ति नृत्यं मणि-पुष्प-वर्षं,
सृजन्ति गायन्ति य मङ्गलानि ।
स्तोत्राणि गोत्राणि पङन्ति मन्त्रान्,
कल्याणभाजो हि जि नाभिषेके ।।२०।।

-: शब्दार्थ :-

नृत्यन्ति नृत्यं - विविध प्रकार के नृत्य करते हैं
मणि-पुष्प-वर्षं - रत्न और पुष्पों की वर्षा
सृजन्ति - करते हैं
गायन्ति - गाते हैं
मंगलानि - मंगल (अष्ट मंगल में निम्न आकृतियाँ आलेखित की जाती है)
(१) स्वस्तिक (२) श्रीवत्स (३) नंदावर्त
(४) वर्धमानक (५) भद्रासन (६) कलश
(७) मत्स युगल (८) दर्पण
स्तोत्राणि - स्तोत्र
गोत्राणि - गोत्र (तीर्थंकरों के गोत्र तथा वंश के नाम)
पठन्ति - बोलते हैं
मन्त्रान् - मंत्र
कल्याणभाजः - पुण्यशालीओं
हि - सचमुच
जिनाभिषेके - जिनाभिषेक के समय (स्नात्रक्रिया के प्रसंग पर)

अर्थ-संकलना :- पुण्यशालीओं सचमुच जिनेश्वर की स्नात्रक्रिया प्रसंग पर विविध प्रकार की नृत्य करते हैं, रत्न और पुष्प की वर्षा करते हैं । अष्टमंगलादि का आलेखन करते हैं तथा मांगलिक स्तोत्र गाते हैं और तीर्थंकरो के वंश, गोत्रों के नाम तथा मंत्र बोलते हैं ।

मूळ -

(गाथा)

२) शिवमस्तु सर्वजगतः पर-हित-निरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ।।२१।।

-: शब्दार्थ :-

शिवम् - कल्याण
अस्तु - हो
सर्व - जगतः - अखिल विश्वका
पर-हित - परोपकार
निरत - तत्पर
भवन्तु - बनो
भूतगणाः - प्राणीओं के समुह
दोषाः - व्याधि, दुःख, दौर्मनस्यादि
प्रयान्तु नाशं - नाश हो
सर्वत्र - सभी जगह
सुखी - सुख भोगने वाले
भवतु - बनो
लोकः - मनुष्य, मनुष्यजाति

अर्थ-संकलना - अखिल (संपूर्ण) विश्व का कल्याण हो । सभी परोपकार में तत्पर बनो । व्याधि, दुःख, दौर्मनस्यादि नाश हो और सभी जगह मनुष्य सुख भोगने वाले बने २१

मूल -

(३) अहं तित्थयर-माया, सिवादेवी तुम्ह नयर-निवासिनी ।
अम्ह सिवं तुम्ह सिंव, असिवोवसमं सिवं भवतु स्वाहा ।।२२।।

-: शब्दार्थ :-

अहं - मैं
तित्थयर-माया - तीर्थंकर की माता
सिवादेवी - शिवादेवी श्री अरिष्ट नेमि तीर्थंकर की माता का नाम शिवा देवी है ।
तुम्ह - तुम्हारे
नयर निवासिनी - नगर में रहने वाली
अम्ह - हमारा
सिवं - श्रेय
तुम्ह - तुम्हारा
सिवं - कल्याण
असिवोवसमं - उपद्रव का नाश करने वाला
सिवं - कल्याण
भवतु - हो
स्वाहा - स्वाहा

अर्थ-संकलना - मैं श्री अरिष्टनेमि तीर्थंकर की माता शिबादेवी तुम्हारे नगर में रहती हूं । इसिलिये हमारा और तुम्हारा श्रेय हो, उसी प्रकार उपद्रवों का नाश करने वाला कल्याण हो । स्वाहा. २२

मूल -

(अनुष्टुप्)

(४) उपसर्गाः क्षयं यान्ति, छिद्यन्ते विघ्न-वल्लयः ।
मनः प्रसन्नतामेति, पूज्यमाने जिनेश्वरे ।।२३।।

शब्दार्थ - पूर्ववत्

अर्थ-संकलना - श्री जिनेश्वर देव का पूजन करने से सभी प्रकार के उपसर्गों का नाश होता है । विघ्नरुपी बेलों का छेदन हो जाता है और मन प्रसन्नता को पाता है २३

मूळ-

(५) सर्व-मङ्गल-माङ्गल्यं, सर्व-कल्याण-कारणम्,
प्रधानं सर्व-धर्माणां, जैनं जयति शासनम् ।।२४।।

शब्दार्थ - पूर्ववत्

अर्थ-संकलना - सर्व मंगलो में मंगलरुप, सर्व कल्याणों का कारण रुप और सर्व धर्मो में श्रेष्ठ ऐसा जैनशासन (प्रवचन) सदा जयवंता है....२४

श्री दंडक प्रकरण

श्री जिनहंसमुनि

(१९) पर्याप्ति द्वार

वेमाणिय जोइसिया, पल्ल तयट्ठंस आउआ हुंति ।
सुरनर तिरि निरअेसु, छ पज्जत्ती थावरे चउगं ।।२८।।

वैमानिक और ज्योतिषी देव अनुक्रमे एक पल्योपम एवं एक पल्योपम के आठवे भाग जितने आयुष्यवाले जघन्य से होते है ।

देवता, गर्भज मनुष्य और तिर्यंच एवं नारकी को छह पर्याप्ति होती है और स्थावर को चार पर्याप्ति होती है ।

स्थितिद्वार की पूर्णाहुति करते हुए वैमानिक और ज्योतिष देवों की जघन्य स्थिति बताते है -

वैमानिक देवताओं का जघन्य आयुष्य एक पल्योपम है एवं ज्योतिष देवताओं का जघन्य आयुष्य पल्योपम के आठवे भाग जितना होता है ।

पर्याप्तिद्वार का आरंभ करते हुए बताते है -

देवता के १३ दंडक, गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच और नारकी के एक एक ऐसे कुल १६ दंडक को छह पर्याप्ति होती है । स्थावर के पांच दंडक को ४ (चार) पर्याप्ति होती है ।

(२०) किमाहार द्वार

विगले पंच पज्जत्ति, छद्दिसि आहार होई सव्वेसिं ।
पणगाइ पये भयणा, अह सन्नितियं भणिस्सामि ।।२९।।

विकलेन्द्रिय को पांच पर्याप्ति होती है ।

सब जीवों को छह दिशाओं का आहार होता है, परंतु वनस्पतिकायादि पांच स्थावर को पद के विषय में भजना होती है ।

अब तीन संज्ञाअे बताते है -

पर्याप्ति द्वार को आगे बढाते हुए कहते है कि -

विकलेन्द्रिय के ३ दंडक को पांच पर्याप्ति होती है ।

किमाहार द्वार

किमाहार याने कौनसे जीव कितने और किस किस दिशा का आहार लेते है -

आहार याने यहाँ मुख से लेने का आहार समझना नहीं, परंतु जीव अपने आत्मप्रदेशोंद्वारा पुद्गल ग्रहण

करता है वह आहार समझना है ।

पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, उर्ध्व और अधो ऐसी छह दिशाएं है । लोक के अंदर रहे हुए जीवों को छह दिशाओं का आहार मिलता है । शेष अलोक को स्पर्श कर, लोक के अंतिम छोर पर रहे हुए सूक्ष्म स्थावर जीवों को तीन-चार-पांच या छह दिशाओंका आहार मिलता है ।

आगे तीन संज्ञा के बारे में बतायेंगे ।

(२१) संज्ञाद्वार

चउविह सुरतिरिअेसु, निरअेसु अ दीह कालिगी सन्ना ।
विगले हेऊवअेसा, सन्ना रहिया थिरा सव्वे ।।३०।।

चार प्रकार के देवता, तिर्यंच और नारकी को दीर्घकालिकी संज्ञा होती है । विकलेन्द्रिय को हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा होत ीहै । सब स्थावर संज्ञारहित होते है ।

संज्ञा तीन है -

१) हेतुवादोपदोशिकी संज्ञा २) दीर्घ कालिकी संज्ञा ३) दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा

१) कई जीवोंके पास भूत भविष्य का विचारही नहीं होता, वे केवल वर्तमान काहि विचार करते है, उन जीवों की संज्ञा **''हेतुवादोपदेशिकी''** संज्ञा कहलाती है ।

२) दीर्घकालिकी संज्ञा :- मनवाले जीवों को यह संज्ञा होती है । मन होने से भूत भविष्य का भी जीव विचार करता है । वह **''दीर्घकालिकी संज्ञा''** है ।

३) दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा :- सम्यगदर्शनवाले जीवों की प्रत्येक क्रिया मोक्ष के लक्ष्यवाली होती है । ऐसे सम्यगदर्शन वाले श्रावक और साधुभगवंतों की जो संज्ञा वह **''दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा''** कहलाती है ।

संज्ञा		
दंडक संख्या	**दंडक के नाम**	**उपपात-च्यवन**
१५	१३ देवताओंके, १ तिर्यंच पंचेन्द्रिय १ नारकी	दीर्घकालिकी संज्ञा
३	द्विन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय	हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा
५	पृथ्वी, अप, तेउ, वायु, वनस्पतिकाय	बिना संज्ञा के
१	मनुष्य	दीर्घकालिकी संज्ञा, दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा

(२१) संज्ञाद्वार चालू.....एवं
(२२) गति और (२३) आगति द्वार

मणुआण दीहकालिय, दिट्ठिवाओ-वअेसिया के वि ।
पज्ज पण तिरि मणुआ च्चिय, चउविह देवे सु गच्छंति ।।३१।।

मनुष्यों को दीर्घकालिकी संज्ञा होती है, कई सम्यक्त्वी मनुष्यों को दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा भी होती है ।

पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य निश्चय से चार प्रकार के देवों के गट में जाते है ।

कौनसा जीव मरकर किस गति में जायेगा वह गति कहलाती है, कौनसी गति में किस किस गतिमें से जीव आता है वह आगति कहलाी है ।

पर्याप्त तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य चार प्रकार के अर्थात्

१) भवनपति २) व्यंतर ३) ज्योतिष्क ४) वैमानिक देव बन सकते है ।

पर्याप्त गर्भज मनुष्य (युगलिक अथवा अयुगलिक) → **४ प्रकार के देव, देवलोक** ← **पर्याप्त तिर्यंच पंचेन्द्रिय (गर्भज एवं समूर्च्छिम)**

गुणस्थान क्रमारोह

आधार ग्रंथ - गुणस्थान क्रमारोह पू.आ. रत्नशेखरसूरि

शुक्लध्यान और शुद्धि

इति त्रयात्मकं ध्यानं, ध्यायन् योगी समाहितः ।
स प्राप्नोति परांशुद्धिं सिद्धि श्री सौख्य कर्णिकम् ।।६५।।

समाधिवान योगी पूर्वोक्त तीन विशेषणयुक्त शुक्लध्यान ध्याते ध्याते उत्कृष्ट शुद्धि को प्राप्त करता है यह शुद्धि कैसी है ? मुक्तिरूप लक्ष्मी के सुख को बतानेवाली है ।

यद्यपि प्रतिपात्येत च्छुक्लं ध्यानंप्रनायते ।
तथाप्यति विशुद्धत्वा दूर्ध्व स्थानं समीहते ।।६६।।

यद्यपि यह शुक्लध्यान पतनशील है फिरभी अत्यंत विशुद्ध है । यहाँ से साधक आगे के गुणस्थानपर आरोहण के लिये दौडता है अतः यह अवस्था अच्छी (प्रगतिशील) है । इस गुणस्थानपर २६ प्रकृतियों का बंध होता है । ७२ प्रकृतियोंका उदय होता है और १३८ प्रकृतियों की सत्ता होती है, यह बात क्षपक श्रेणीवाले को आठवे गुणस्थानमें होती है ।

९. अनिवृत्ति गुणस्थान

अब क्षपक श्रेणीवाले साधु महात्मा जो प्रकृतियाँ खपाते है वह आगे की पाँच गाथाओंमें बताते है ।

अनिवृत्ति गुणस्थानं ततः समधि गच्छति ।
गुणस्थानस्य तस्यैव भागेषुनवसुक्रमाता ।।६७।।

आठवें गुणस्थानक के बाद क्षपक श्रेणीवाला साधक क्षपकश्रेणी के नौवे गुणस्थानक में जाता है । नौवे गुणस्थानक के नौ भाग है, किस गुणस्थानक में कितनी कर्मप्रकृतियाँ खपाते है यह अब बताते है ।

गतिःश्वाभ्रमी च तैरश्वी द्वेतयोरनुपूर्विके ।
साधारणत्व मुद्योतः सूक्ष्मत्व विकलत्रयम् ।।६८।।
एकेन्द्रियत्वमातापः स्त्यानगृदध्यादिकत्रयम् ।
स्थावरत्वमिहाद्यंशे क्षीयंतेषोऽशेत्यमूः ।।६९ ।।

नरकगति$_{१}$, तिर्यंचगति$_{२}$, नरकानुपूर्वी$_{३}$, तिर्यंचानुपूर्वी$_{४}$, साधारण नामकर्म$_{५}$, उद्योत नामकर्म$_{६}$, सूक्ष्मनामकर्म$_{७}$, बेईन्द्रिय नामकर्म$_{८}$, तेइन्द्रिय नामकर्म$_{९}$, चउरेन्द्रिय नामकर्म$_{१०}$, एकेन्द्रिय नामकर्म $_{११}$, आतपनामकर्म$_{१२}$, निद्रा$_{१३}$, निद्रानिद्रा$_{१४}$, प्रचला$_{१५}$, स्थावर नामकर्म$_{१६}$ ये सोलह प्रकृतियाँ क्षपक श्रेणीवाला साधक नौवे गुणस्थानक के प्रथम भाग में खपाता है ।

अष्टौमध्य कषायांश्चय, द्वितीयेथतृतीयके ।

षंढत्वतुर्यकेस्त्रीत्वं, हास्यषट्कं च पंचमे ।।७०।।

आठ मध्य कषाय, अप्रत्याख्यानिय क्रोध$_{१}$, मान$_{२}$, माय$_{३}$, लोभ$_{४}$ एवं प्रत्याख्यानिय क्रोध$_{५}$, मान $_{६}$, माया$_{७}$, लोभ$_{८}$ ये नौवे गुणस्थान के दुसरे भाग में खपाता है ।

तीसरे भाग में नपुंसकवेद खपाता है ।

चौथे भाग में स्त्रीवेद खपाता है ।

पांचवे भाग में हास्य$_{१}$, रति$_{२}$, अरति$_{३}$, शोक$_{४}$, भय$_{५}$ और जुगुप्सा$_{६}$ इन छह प्रकृतियों को खपाता है ।

चततुर्थाशेषुशेषेषु ऋमेणैवातिशुद्धि तः ।

पुंवेदश्व तथा क्रोधो, मानो माया च नश्यति ।।७१।।

छठ्ठे भाग में, आगे के चार भाग में अनुक्रम से पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान, संज्वलन माया इन चार प्रकृतिया को ध्यान से उत्पन्न हुई निर्मलता से खपाते है ।

इस गुणस्थानक में २२ प्रकृतियाँ बंध में, ६६ प्रकृतियाँ उदयमें और १०३ प्रकृतियाँ सत्ता में होती है ।

१०) सूक्ष्म संपराय, दसवा गुणस्थान

नौवे गुणस्थान के बाद क्षपक श्रेणीवाले मुनि भगवंत दसवे सूक्ष्म संपराय नामक गुणस्थानक में जाते है, यहाँ पर क्या होता है वह बताते है ।

ततौ सौ स्थुललोभस्य सूक्ष्मत्वं प्रापचयन क्षणात् ।

आरोहति मुनिः सूक्ष्म संपरायं गुणास्पदम् ।।७२।।

क्षणभर में भावों की शुद्धि से स्थूल लोभ का चूरा कर सूक्ष्म करती है । जिसे कीट्टीकरण कहते है । संपराय अर्थात् कषाय, स्थूल नहीं परंतु सूक्ष्म अंश जहाँ कषाय का होता है वह सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक है ।

इस गणुस्थान में १७ प्रकृतियों का बंध होता है, ६० सूक्ष्म प्रकृतियों का उदय होता है, एवं १०२ प्रकृतियाँ सत्ता में होती है ।

(क्षपक श्रेणीवाले को ग्यारहवा गुणस्थान होता नहीं)

११) उपशांत मोह गुणस्थान

एकादशं गुणस्थानं क्षपकस्य भवेन्नहि ।

दशमात्सूक्ष्म लोभांशान् क्षयपन् द्वादशंव्रजेत ।।७३।।

क्षपक श्रेणी पर आरुढ हुए क्षपक महात्मा को ग्यारहवा गुणस्थान नहीं होता, दसवे गुणस्थान में ही लोभ के सूक्ष्म अंश को अत्यंत सूक्ष्म कर वह उस संज्वलन लोभ के कण को खपाकर सीधा बारहवें क्षीणमोह गुणस्थान में पहुँच जाता है ।

१२) क्षीणमोह गुणस्थान

बारहवे क्षीणमोह गुणस्थान में शुक्लध्यान का दुसरा भेद होता है, यह बताते हुए कहते है -

थ भूत्वास क्षीण महात्मा, वीतरागो महायतिः ।
पूर्ववद्भावसंयुक्तो, द्वितीयंशुक्लमाश्रयेत ।।७४।।

बारहवे गुणस्थान में रहे हुए क्षपक श्रेणीवाले साधु महात्मा को इस गुणस्थान में शुक्लध्यान का दुसरा भेद होता है । प्रथम पाये के ध्यान के स्वरुप को बताया उसी प्रकार दुसरे सोपान में ध्याता ध्यान करता है । इस स्थान में क्षपक किस प्रकार होता है यह बताते है -

क्षपक वीतराग होता है, विशेष राग द्वेष रहित होता है ।

महायती अर्थात् यथाख्यात चारित्रवाला होता है ।

विशुद्ध भावयुक्त याने अच्छे-शुद्ध परिणाम वाला होता है ।

शुक्लध्यान का नाम
अपृथकत्वमवीचारं, सवितर्क गुणान्वितम् ।
सध्यायत्येकयोगेन शुक्लध्यानं द्वितीयकम् ।।

इस क्षीणमोह गुणस्थान में स्थित क्षपक श्रेणीवाले साधु एक योग कर शुक्लध्यान के द्वितीय भेदका ध्यान करते है - यह ध्यान कैसा है यह बताते हुए कहते है -

अपृथक्त्व याने पृथकत्वरहित है ।

अविचार याने विचार रहित है ।

परंतु सवितर्क याने वितर्क गुणयुक्त है ।

निजात्मद्रव्यमेकं वा, पर्यायमथवा गुणम् ।
निश्चलंचिंत्यते यत्र, तदेकत्वं विदुर्बुधाः ।।७६।।

ध्यान करने तत्पर ध्याता ने अपने शुद्ध आत्मद्रव्य को एवं परमात्मद्रव्य को जान लिया है । परमात्म द्रव्य के पर्याय को अथवा उसके कोई एक गुण का निश्चय करके उसका चिंतन करता है इसी ध्यान को एकत्व कहते है ।

यद्व्यजनार्थ योगेषु, परावर्तविवर्जितम्
चिन्तनंतदविचारं, स्मृतसद्ध्यान् कोविदैः ।।७७।।

सद्ध्यान को शास्त्र की आम्नाय को जाननेवाले पंडितों ने इस ध्यान को अविचार विशेषणयुक्त द्वितीय शुक्लध्यान का भेद बताया है । यह ध्यान ऐसा है कि जिसमें वर्ण और अर्थ में कहाँ भी परिवर्तन नहीं है । वर्ण में अथवा अर्थ में हि ध्याता स्थिर बनता है । इस ध्यान में शब्द शब्दांतर भी नहीं है, ऐसा यह चिंतन अविचार कहलाता है ।

निजशुद्धात्मनिष्ठं हि, भावश्रुतावलंबनात् ।
चिन्तनंक्रियते यत्र, सवितर्क तदुच्यते ।।७८।।

अपने शुद्ध परमात्मा में भावश्रुत का आलंबन लेकर सूक्ष्म विचार का चिंतन करे इसे सवितर्क याने वितर्क (सहित) गुणोपेत द्वितीय शुक्लध्यान कहते है ।

इत्येकत्वमविचारं सवितर्कमुदाहृतम् ।
तस्मिन् समरसीभावं, धत्तेस्वात्मानुभूति तः ।।७९।।

एकत्व-अविचार और सवितर्क रुप तीन विशेषणों से युक्त द्वितीय भेदवाला शुक्लध्यान है । इस द्वितीय शुक्लध्यान में स्थित होकर ध्यान करनेवाला साधक महात्मा समरसी भाव को अपने आत्मअनुभव से धारण करता है ।

इत्येतद्ध्यानयोगेन प्लुष्यत्कर्मेन्धनोत्करः ।
निद्रा प्रचलयोर्नाश मुयान्त्ये कुरुते क्षणे ।।८०।।

द्वितीय शुक्लध्यान के योग से साधु कर्मरुपी समिध याने काष्ठ को जलाकर अंत में निद्रा एवं प्रचला इन दो प्रकृतियों का नाश करता है ।

अंत्येदृष्टि चतुष्कं च, दशकंज्ञानविघ्नयोः ।
क्षपयित्वा मुनिः क्षीणमोहः, स्यात्केवलात्मकः ।।८१।।

क्षपक श्रेणीपर आरुढ मुनि क्षीणमोह गुणस्थान के अंत समय में चक्षुदर्शन$_{१}$, अचक्षुदर्शन$_{२}$, अवधिदर्शन$_{३}$, केवलदर्शन$_{४}$, ज्ञानावरणीय, अंतराय कर्म$_{५}$ इन चौदह प्रकृतियोंका क्षय कर मोहनीय कर्म के अंशसे रहित होकर केवलज्ञान से युक्त बनता है ।

इस गुणस्थान में एक वेदनीय का बंध.....सत्तावन (५७) प्रकृतियोंका उदय है एंव एक सौ एक (१०१) प्रकृतियों की सत्ता है ।

१३. सयोगी गुणस्थान

एवं च क्षीण मोहान्ता त्रिषष्ठि प्रकृति स्थितिः ।
पञ्चाशीतिर्ज्जरद्वस्त्रप्रायाः शेषाः सयोगिनिः ।।८२।।

पूर्वोक्त ६३ प्रकृतियोंकी स्थिति क्षीणमोह गुणस्थान तक ही है । चौथे गुणस्थान से तिरसठ (६३) प्रकृतियों में से क्षीणमोह गुणस्थान तक जो कर्म प्रकृतियाँ खपायी है उनका क्रम बताते है -

एक प्रकृति का चौथे गुणस्थान में क्षय किया.....
एक प्रकृति का पाँचवे गुणस्थान में क्षय किया.....
आठ प्रकृतियों का सातवे गुणस्थान में क्षय किया.....
छत्तीस (३६) प्रकृतियों का आठवे गुणस्थान में क्षय किया.....
सत्रह प्रकृतियों का बारहवे गुणस्थान में क्षय किया .....

१+१+८+३६+ १७ = ६३

इन तिरसठ प्रकृतियों की स्थिति क्षीणमोह गुणस्थान तक ही है । शेष पिच्यासी (८५) प्रकृतियाँ जिर्ण वस्त्र तुल्य सयोगी गुणस्थान तक रहती है ।

भावोऽत्र क्षायिकः शुद्धः सम्यक्त्वं क्षायिकंपरम् ।
क्षायिकं हि यथाख्यातं चारित्रं तस्य निश्चितम् ।।८३।।

केवली भगवंतो को इस सयोगी गुणस्थान में शुद्ध क्षायिक भाव होते है । क्षायिक सम्यकदर्शन एवं यथाख्यात नामक चारित्र होता है । इस सयोगी गुणस्थान में उपशमिक अथवा क्षायोपशिक भाव नहीं है, क्योंकि इस गुणस्थान में मोहनीय का क्षय हो गया है । अतः ऐसी आत्मा को फक्त-केवल क्षायिक भाव ही होता है ।

जिनशासन के महाप्रभावक आचार्य भगवंत

लक्ष क्षत्रिय प्रतिबोधक

(१३) श्री जयसिंहसूरि

आधारग्रंथ
अचलगच्छ दिगदर्शन -श्री पार्श्व

लाखो क्षत्रियो को प्रतिबोध देकर उन्हें जैनधर्म के रंग में रंगनेवाले प्रभावक आचार्यो में जयसिंहसूरि आगे की पंक्ति में स्थान रखते है । वि.सं. ११७९ में उनका जन्म कोंकण प्रदेश के अंतर्गत सोपारा पट्टण में हुआ था उनका पूर्वाश्रम का नाम जेसिंगकुमार पिता ओसवाल वंशीय व्यवहारी दाहड, माता, नेढी । श्रेष्ठी दाहड कोटिध्वज का गौरव रखते थे । गुर्जरेश्वर सिद्धराज के साथ उनके व्यक्तिगत संबंध थे, जिसके द्वारा उनके उच्च स्थान का सूचन मिलता है, उस अरसे में कोंकण प्रदेश पर गुर्जरेश्वरो की शाख थी ।

जोसिंग के जन्म के पहले माता नेढी ने स्वप्न में पूर्ण चंद्र देखा था । पट्टावली में ऐसा वर्णन है कि स्वप्न में उसने मंदिर के शिखर पर सुवर्ण कलश चढाया था इसलिये जेसिंग का लाड का नाम जिनकलश रखा गया । यह असाधारण स्वप्न देख माता को कौतूहल हुआ । वल्लभीगच्छ के आचार्य भानुप्रभसूरि जो उस समय सोपारा में बिराजमान थे, उनके पास यह बात बतलाने पर आचार्य ने ऐसी भविष्यवाणी का उच्चारण किया '' यह शुभ शकुन ऐसा सूचित करता है कि जैन शासन को यशकलगी दिलाये ऐसा मेधावी बालक आप की कुक्षी से अवतरेगा, संसार का त्याग कर वो संयम मार्ग अपनायेगा ।'' यह सुनकर माता-पिता बहुत हर्षित हुए ।

हुआ भी ऐसा ही, सोपारा में पधारे हुए आचार्य कक्कसूरि के मुख से जंबूचरित्र का श्रवण करते हुए जेसिंग के हृदय में वैराग्य के अंकुर प्रगटे और जंबूकुमार की जैसे दीक्षा ग्रहण करने के भाव जागे, उस वक्त उनकी उम्र मात्र सत्तरह वर्ष की थी ।

महान बनने के लिये सर्जित बालक की इच्छा के आडे कोई मां -बाप आते है क्या ? श्रेष्ठी दाहड और श्राविका नेढी बालक के मन की बात पहले से ही जानते थे और इसीलिये उन्होने जेसिंग अपना भावि मार्ग स्वेच्छा से पक्का कर सके ऐसे ख्याल से उसे तीर्थयात्रा पर भेजा, अपने इच्छित आदर्श की दिशा में बालक आगे बढे यही अच्छा ।

अपने परममित्र आराधर, अपरनाम, शुभदत्त के साथ तीर्थाटन करता जेसिंग खंमात, भरुच वगैरह महानगर घूमकर श्रीपंचासरा पार्श्वनाथ के दर्शनार्थ पाटण पहुंचा । उस काल में पाटण की समृद्धि कुछ ओर थी, भारतवर्ष के उत्कृष्ट नगरो में उसकी गणना होती थी । पाटण की भव्यतमता सिर्फ धनकुबेरो या राजनीतियो से ही नहीं थी, उग्र तपस्वीयों और प्रखर विद्वानो का भी पाटण मुख्य धाम था । गुजरात की राज्य लक्ष्मी वैसे ही संस्कार लक्ष्मी उस अरसे में चरमकला से खिली थी, वहां पधारते अनेक प्रवासीओ की तरह जेसिंग ने भी यह अनुभव किया ।

जेसिंग ने महाराजा सिद्धराज की भी मुलाकात ली और उसने एक लाख टंक के मूल्य का हीराजडित हार भेंट में दिया । सिद्धराज ने उसे बेटा कह कर संबोधित किया और उसका निजी व्यक्ति के रुप में सन्मान किया । राजा के पाटण आने का प्रयोजन पूछने पर जेसिंग ने दीक्षा लेने की अपनी निजी भावना व्यक्त की । राजा ने उसे धराद में बिराजते आचार्य आर्यरक्षितसूरि के पास दीक्षा ग्रहण करने का सूचित किया । अंचलगच्छ-प्रवर्तकजी के उदात्त चारित्र से राजा बहुत ही प्रभावित हुआ था, जेसिंग ने भी उनके बारे में बहुत सुना था ।

सिद्धराज की प्रेरणा से जेसिंग धराद गया । सूरि देवदर्शन को गये होने से वो उपाश्रय में बैठा । उसकी नजर ठवणी पर रखे हुए दशवैकालिकसुत्र पर पडी, वो ग्रंथ लेकर वो पढने लगा, उसकी सात सौ गाथाये मात्र एक बार पढने से ही उसे कंठस्थ हो गयी । थोडी देर में सूरिजी आ पहुंचे, बालक की एकाग्रता और बुद्धिमता देखकर वे आश्चर्यचकित हो गये । उत्साहपूर्वक उन्होंने बालक के आगमन का कारण पूछा और वे सारी बातों से अवगत हो गये, ऐसे मेघावी बालक को कौन शिष्य रुप में न स्वीकारे ?

वि.स. ११९७ में धराद में महोत्सवपूर्वक उसे दीक्षा देकर उसका यशचंद्र ऐसा नाम रखा । तब से गुरु और शिष्य की महान जोडी ने अप्रतिम कारकीर्दि द्वारा जैन इतिहास में अग्रिम प्रकरण आलेखित किया । गुरु ने जिस विचार इमारत की नींव डाली थी उसे भव्य आकार देने वाला शिष्य अब उन्हें मिल गया था, ऐसा योग दुर्लभ होता है ।

नवोदित शिष्य की देहकांति का वर्णन ध्यान आकर्षित करने योग्य है । पट्टावलीकार बताते है कि सोलह अंगुल लंबा, सात अंगुल चौडा मानो कुंकम के तिलक से अंकित हो ऐसे उत्तम लक्षणवाला उनका ललाट था । उनकी चित्त शक्ति भी अद्‌भुत थी, प्रथम वाचना से ही उन्हें सब कंठस्थ हो जाता । तीन वर्ष में तीन करोड श्लोक परिमाण ग्रंथ उनकी जीभ पर खेलने लग गये थे । व्याकरण, न्याय, साहित्य, छंद, अलंकार, आगम आदि विविध श्रुत-सागर के वे पारगामी बन गये । कविओ ने ''सात कोटि ग्रंथ मुख जिन्हें'' ऐसा कह कर उनके विद्याज्ञान को नवाजा था ।

जैसा ज्ञान ऐसे ही कार्य । उनके सम्यक्त्व के विषय में वर्णन करने का भी कवि चूके नहीं है । गुर्वावली में बताया गया कि वे शिष्य परिवार सहित दो दिवस के अंतर पर विहार करते, प्रायः गांवो में एक रात्रि और नगर में पांच रात्रि रहते, इस तरह उग्र विहार और कठोर तपस्वी के रुप में उनका नाम प्रसिद्ध हुआ था ।

वि.स. १२०२ में उन्हें पावागढ निकट के मंदउर नगर में आचार्यपद से विभूषित करने में आया और जयसिंहसूरि ऐसा उनका नामाभिकरण करने में आया ।

इस प्रसंग पर वडोदरा, खंभात वगैरह नगरो में से विशाल समुदाय पधारा । चंद्रगच्छीय मुनिचंद्रसूरि संततीय आचार्य रामदेवसूरि जैसे अन्य गच्छीय महानुभावो ने इस प्रसंग में प्रमुखता से भाग लिया । मंदउर के

श्रीपार्श्वनाथ जिनालय में मनाये गये इस धन्य प्रसंग पर राउतचंद्र नामक श्रेष्ठिवर्य जो उक्त रामदेवसूरि का परम भक्त श्रावक था उसने बहुत धन खर्चा, यह श्रावक अचलच्छीय नहीं था, यह बात यहां बहुत ही महत्व की है, क्योंकि पहले गच्छ व्यवस्था संकुचित मानस पर आधारित नहीं थी, उसका ऐसे प्रसंगो पर से स्पष्ट सूचन मिल जाता है ।

रामदेवसूरि के आचार्यपद महोत्सव में जयसिंहसूरि ने भी उमंग पूर्वक भाग लिया और अंचलगच्छीय श्रावको ने इस प्रसंग पर बहुत धन खर्चा यह बात भी यहां नोंधनीय है । विविध गच्छो के बीच के ऐसे स्नेहभाव भरे प्रसंग वास्तव में प्रेरक है । विविध गच्छ एक दूसरे के प्रतिस्पर्धी है ऐसी मान्यता कितनी भ्रान्तियुक्त है उसकी प्रतीती ऐसी हकीकतो से सहजता से हो सकती है ।

सारे ही श्वेतांबर संप्रदायो में उस वक्त अपूर्व एकता थी इसका सूचन वि.सं. ११८१ में हुए दिगंबरो और श्वेतांबरो के बीच के ऐतिहासिक वाद विवाद से भी मिलता है । समग्र दिगंबर संप्रदाय की नेतृत्वभार कर्नाटक के समर्थ विद्वान कुमुदचंद्र भट्टारक ने लिया । श्वेतांबर संप्रदाय के कर्णधार थे वादीदेवसूरि, शासन की एकता की आवश्यकता के वक्त गच्छो की भेदरेखा पहले कभी आडी नहीं आयी है, परिणामस्वरुप दिगंबर संप्रदाय को श्वेतांबरो की स्पर्धा में उतरना पडा, जो उनके हित के विरुद्ध साबित हुआ यदि गच्छ स्पर्धा होती तो परिणाम विपरित आता इसमें कोई शंका नहीं । ऐतिहासिक दृष्टि से उक्त प्रसंग बहुत ही महत्व का है। बाद में दिगंबरो का पराजय हुआ था इससे उनका प्रभुत्व गुजरात में से कम होता गया ।

एक बार राजा कुमारपाल पूजा कर रहे थे तब मुंगीपट्टण से आये उसके मित्र ने कहा कि आपका पीतांबर पवित्र नहीं है । राजा ने उसका कारण पूछने पर परदेशी ने बताया कि ''हमारा राजा मदनभम्र पहले सारे ही वस्त्रो को उसकी शैय्या पर रखवाता है, उसके बाद उनका निकास होता है ।'' राजा यह बात सुनकर आश्चर्यचकित हो गए, अपने गुप्तचरो द्वारा इस बात की पहले पक्की जांच करवायी और मुंगीपट्टण के बुनकरो को पाटण में बसाने का उन्होंने निश्चय किया ।

बुनकरो के मुखियाओ ने राजा की बात को स्वीकारा, परंतु ऐसी शर्त रखी कि, हमारी समग्र शालवी ज्ञाति, हमारे गुरु छत्रसेन भट्टारक तथा इष्टदेव, देवीयो की मूर्तियो सहित आयेंगे । राजा ने उनकी शर्त को स्वीकारा इसलीये समग्र शालवी ज्ञाति ने पाटण में आकर हमेशा के लिये बसाहत की, उनकी बस्ती से सात पुरे (मौहल्ले) बसे । अपने कौशल्य से उन्होंने पाटण की कीर्ति में वृद्धि की, पाटण पटोले से प्रसिद्ध हुआ ।

वे दिगंबर संप्रदाय के होने से रात्रिपुजा करते, वो राजा को अच्छा नहीं लगता था । वे श्वेतांबर हो जाय तो अच्छा ऐसा उन्होंने विचार किया । कलिकाल सर्वज्ञ हेमचंद्राचार्य ने शालवीयो के गुरु छत्रसेन भट्टारक

तथा चारित्रनायक के बीच वाद कराने का सूचन किया, हारने वाला अपने शिष्य समुदाय सहित जीतनेवाले का संप्रदाय स्वीकारेगा ऐसा निश्चित करने में आया । दोनो पक्ष इस बाबत में सहमत हुए और दोनो के बीच वाद हुआ, जो सात दिन तक चला, अंत में चारित्रनायक जीते । शर्त के अनुसार छत्रसेन भट्टारक जयसिंहसूरि के शिष्य हुए उनके अनुयायीयो ने भी श्वेतांबर संप्रदाय को स्वीकार किया, उनके इष्ट देव, देवताओ की प्रतिमाओ को भी कंदोरा (कमरपट्टा) कराकर श्वेतांबर परम्परा का किया । उनमें से श्रीनेमिनाथ, श्रीआदिनाथ और श्रीपद्मावती देवी की प्रतिमाये क्रमशः पाटण की त्रिसेरी पोल, राजनगर में ईलमपुर, उसी तरह जमालपुर में है ऐसे पुराने उल्लेख मिलते है ।

छत्रसेन का नाम छत्रहर्ष रखने में आया, इससे उनका शिष्य परिवार अंचलगच्छ में हर्षशाखा से प्रसिद्ध हुआ, उनके दिगंबरी शिष्यो ने भी उनके साथ अंचलगच्छीय सामाचारी को स्वीकार किया और उन सब को हर्ष शाखा में दीक्षित करने में आया ।

उस समय में मुसलमानो के अनियंत्रित हमलो ने भारतवर्ष में त्रास का साम्राज्य फैला दिया था । विधर्मी हमलो से अपनी संस्कृति की रक्षा करने की कठिन जवाबदारी भारतवासियो को निभाने की थी, ऐसे समय में जैनो ने भी अपने कर्तव्य दृढता से निभाये थे । कलिकाल सर्वज्ञ हेमचंद्राचार्य ऐसे विचार के थे कि श्वेतांबर संप्रदाय की एकता सुदृढ करने हेतु सारे ही गच्छो ने समान सामाचारी का अनुकरण करना चाहिये जिससे जुदाई की भावना ही नहीं रहे । उन्होंने वाहकगणि द्वारा जयसिंहसूरि को सूचित किया की बेणपत से संघ एकत्रिक करके सब समान सामाचारी स्वीकारे ऐसी पहल करो, चरित्रनायक सहमत हुए परंतु कितने ही विघ्नसंतोषीयो ने इस प्रस्ताव को हानि पहुंचायी । समान साभाचारी के विचार को तोड डालने के लिये पक्षापक्षी का उग्र वातावरण तैयार करने में आया और खुद जयसिंहसूरि के पीछे मारने वाले भेजने का षडयंत्र रचने में आया । पर ये दुष्ट ही अदर, अंदर लडने लगे ओर अंत में जयसिंहसूरि ने ही उन्हें बचाया । ऐसे कलुषित वातावरण में मूल प्रस्ताव दूर फेंका गया ।

समान समाचारी के संदर्भ में दूसरी एक आख्यायिका भी पट्टावलीकार वर्णित करते है । कुमारपाल राजा को किसी ईष्यालु श्रावक ने चडाया की '' आप भाद्रपद सुद ४ के दिन सांवत्सरिक पर्व की आराधना करते हो परंतु यहां कितने ही मुनि ५ के दिन उस पर्व की आराधना करते है, ऐसा धर्मभेद आपके नगर में शोभा नहीं देता । इससे राजा ने जल्दबाजी में हुक्म दिया कि पंचमी के दिन सांवत्सरिक पर्व के हिमायतीयो को आज से मेरे नगर में नहीं रहना है ।

राजा की आज्ञा से अनेक गच्छ के मुनि पाटण में से विहार कर गये, परंतु जयसिंहसूरि वहीं पर रहे, उन्होने व्याख्यान में नवकारमंत्र का विवरण शुरु किया था इसलीये राजा को उन्होंने पूछवाया कि वे यह विवरण पूरा करके जाय कि अधूरा छोडकर जाय ? जयसिंहसूरि के पांडित्य से सुविदित होने से राजा समझ गये कि

वर्षो तक वे नवकारमंत्र का विवरण करने में समर्थ है इससे राजा ने उपाश्रय में स्वयं आकर उनसे क्षमायाचना मांगी । जयसिंहसूरि पाटण में राजा के विरुद्ध अडग रहे होने से उनका समुदाय अचलगच्छ के रुप में पहचाना गया, ऐसी उक्ति प्रचलित है ।

कुमारपाल के साथ चरित्रनायक का संपर्क वर्षो पुराना था । राजा की प्रेरणा से चरित्रनायक ने तारंगा तीर्थ की यात्रा की । राजा के इस तीर्थ का उद्धार कराने के बाद यात्रा करनेवाले जयसिंहसूरि सबसे प्रथम आचार्य थे, यह बात खास उल्लेखनीय है ।

चरित्रनायक को लक्ष क्षत्रिय प्रतिबोधक के रुप में जैन इतिहास में चिरकीर्ति प्राप्त हुई थी, उस विषय के कितने ही प्रसंग भी यहां प्रस्तुत है । क्षत्रियो ने जैनाचार्यो के उपदेश से प्रतिबोध पाकर जैनधर्म स्वीकारा और उन्हैं ओसवाल ज्ञाति में सम्मिलित करने में आया । भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा में छठ्ठे पट्टधर रत्नप्रभसूरि ने ओशनगर में लाखो क्षत्रियो को जैनधर्मी बनाया इस ऐतिहासिक घटना के बाद यह प्रक्रिया पूर्ण वेग से चालू रही ठेठ विक्रम की सोलहवीं शताब्दी तक ।

वि.सं. १२०८ में जयसिंहसूरि विहार करते हुए हस्तितुंड में पधारे । वंहा के राजा अनंतसिंह राठोड ने सूरि का उपदेश सुन जैनधर्म को स्वीकार किया । कहा जाता है कि राजा जलोदर के असाध्य रोग से पीडित था, सूरि के प्रभाव से उसका रोग दूर हुआ, राजा अनंतसिंह ने शत्रुंजय की यात्रा की, हस्तितुंड में श्रीवीरप्रभु का प्रासाद (मंदिर) बंधवाया । उसके वंशज ओसवाल ज्ञाति में मिल हथुडिया राठोड गोत्र से पहचाने गये । अनंतसिंह के आग्रह से उस वर्ष सूरि वहां चातुर्मास में रहे ।

राजस्थान के अंतर्गत कोटडा में यदुवंशी सोमचंद राज्य करता था, उसके पास ५००० सुभटो की सेना थी जिनकी मदद से वो आसपास लूटपाट करता उस अरसे में जयसिंहसूरि ५०० शिष्य सहित उमरकोट से जेसलमेर विहार कर रहे थे । मार्ग में सोमचंद उन्हें सामने मिला उसने जो कुछ भी धनदौलत हो वो सौंप देने का आदेश दिया । जयसिंहसूरि ने आनाकानी किये बिना साधुओ के उपकरण धर दिये, इससे सोमचंद, आश्चर्यचकित हो गया । जयसिंहसूरि के प्रभाव के बंधन में वो जकड गया हो, ऐसा उसे लगा । सूरि का उपदेश सुन उसका हृदय परिवर्तन हुआ और उसे वि.सं. १२११ में जैनधर्म स्वीकार, लूटपाट नहीं करने काउसने वचन दिया पारकर के चांदणराना ने साक्षी दी, उसके पुत्र गाला पर से उसका वंश गाला गोत्र से प्रसिद्ध हुआ । सोमचंद ने सूरि के उपदेश से कोटडा में श्रीपार्श्वनाथ भगवान का तथा गोत्रदेवी वीसलमाता का मंदिर बंधवाया । सवा मण सुवर्ण की श्रीशांतिनाथ भगवान की प्रतिमा करायी तथा उसके उपर हीरा माणेक जडित छत्र कराया ।

भालेज के निकट के नापा गांव के वीसा श्रीमाली लूणिग श्रेष्ठी ने वि.सं. १२२० में जयसिंहसूरि के उपदेश से जैनधर्म स्वीकार किया । उसने उक्त रामदेवसूरि के आचार्यपद महोत्सव में एक लाख टंक द्रव्य का खर्च किया तथा जिनबिंबो की प्रतिष्ठा करायी । लूणिग के वंशज लोलाडा गांव में बसने से वे लोलाडिया गोत्र से प्रसिद्ध हुए ।

रत्नपुर निवासी भंडारी गोदा जो महेश्वरी संप्रदाय के अनुयायी थे उन्हें जयसिंहसूरि ने वि.सं. १२२३ में प्रतिबोध देकर जैन धर्मानुरागी बनाया । भंडारी गोदा ने सूरि के उपदेश से शत्रुंजय, गिरनार के तीर्थसंघ निकाले तथा अनेक नगरो में प्रभावना करके सवा लाख रुपिये खर्चे । उसके वंशज महुडी में बसने से वे महुडिया गोत्र से प्रसिद्ध हुए ।

वि.सं. १२२४ में लोलाडा में राउत फणगर राठोड को जयसिंहसूरि ने प्रतिबोध देकर जैन बनाया, उसके वंशज पडाईया गोत्र से पहचाने जाते है इस वंश में समरसिंह, सादा, समरथ, मंडलिक, तोलाक अनेक प्रसिद्ध पुरुष हो गये है ।

थरपारकर के अंतर्गत उमरकोट के राउत मोहणसिंह परमार ने जयसिंहसूरि के उपदेश से प्रभावित होकर वि.सं. १२२८ में जैनधर्म स्वीकारा । कहा जाता है कि मोहणसिंह निःसंतान था परंतु सूरि के समागम के बाद उसे पांच पुत्र हुए, अंतिम नागपुत्र से उसके वंशज नागडा गोत्र से प्रसिद्ध हुए । नागडा वंशजो ने अपने सुकृत्यो से जैनधर्म का नाम रोशन किया है । उक्त नागपुत्र वास्तव में नाग था ऐसा पट्टावली में दर्शाया गया है । ठंडी के दिनो में नाग ठंडी से बचने चूल्हे में सोया था ऐसे में चूल्हा जलाने पर उसकी मृत्यु हुई ऐसा भट्टग्रंथो में बताया गया है । उसके स्मारक के रुप में उमरकोट में नाग की फनवाली खडी मुर्ति बैठाकर उसके उपर देहरी बांधने में आयी ।

वि. सं. १२२९ में जयसिंहसूरि विहार करते हुए सिंधु नदी के पास के पीलुडा नगर में पधारे । वहां के राजा रावजी सोलंकी के द्वितीय कुंवर लालणजी को कोढ था । सूरि के द्वारा मंत्रप्रभाव से कोट दूर करने पर राजा ने प्रभाविक होकर जैनधर्म स्वीकारा । लालण पुत्र से उसके वंशज लालण गोत्र से सुप्रसिद्ध हुए । भट्टग्रंथ में उल्लेख है कि रावजी ठाकुर ने चरित्रनायक के चरणो में स्वर्णमुद्राओ से भरा हुआ थाल अर्पित किया परंतु निःस्पृही आचार्य ने वो स्वीकारा नहीं इससे राजा ने उस द्रव्य से पीलुडामें श्रीशांतिनाथ प्रभु का मनोहर जिनमंदिर बंधाया, वि.सं. १२२९ में उनके अति आग्रह से जयसिंहसूरि ने वहां चातुर्मास किया । उनकी आज्ञा से रावजी ठाकोर के मंत्री देवसी ने इस नवोदित जैन कुटुंब को साधर्मिक भाव से ओशवालो की पंक्ति में मिलाया । दानेश्वरी लालणजी के वंशजो में अनेक प्रसिद्ध पुरुष हो गये है, जिसमें नगरपारकर के जेसाजी प्रमुख है । 'जेसो जगदातार' ऐसा उनकी उपाधि थी । जामनगर के वर्धमान शाह और पद्मसिंह शाह ये दोनों सुविख्यात बंधु भी इस गोत्र के थे ।

वि.सं. १२३१ में डीडु ज्ञाति के चौधरी बिहारीदास जयसिंहसूरि के उपदेश से जैन हुए, उसके वंशज ओसवाल ज्ञाति के सहस्त्रगणा गांधी गोत्र से पहचाने गये । अंचलगच्छ प्रवर्तक आर्यरक्षितसूरिजी ने रत्नपुर के हमीरजी को प्रतिबोध देकर जैनधर्मी बनाया । हमीरजीके पुत्र सरवतसंघ से उनके गोत्र का नाम सहस्त्रगणा गांधी पडा ऐसा भट्टग्रंथ में से उल्लेख मिलता है ।

पुववाडे में राऊत कटारमल चौहाण के पास अनगिनत धन था, वहां के राजा उदयसिंह को भी उसने लग्न प्रसंग पर आवश्यकता पडते पर द्रव्य सहायता की थी । वि.सं. १२४४ में जयसिंहसूरि का धर्मोपदेश सुन कटारमल जैन हुआ उसके वंशज कटारिया गोत्र से पहचाने गये । कटारमल ने सूरि के उपदेश से हस्तितुंड में श्रीवीरप्रभु का जिनप्रसाद बंधवाया, जो आज मुछाला महावीर के नाम से प्रसिद्ध है ।

कोरडा का राजसेन परमार प्रख्यात लूटेरा था । जयसिंहसूरि की धर्मदेशना सुन उसके जीवन में परिवर्तन आ गया । सूरि के उपदेश से राजसेन ने लूट और जीवहिंसा का त्याग करके वि.सं. १२४४ में जैनधर्म स्वीकारा, उसके वंशज ओसवाल ज्ञाति में पोलडिया गोत्र से पहचाने जाते है ।

वि.सं. १२५५ में जैसलमेर में देवड चावडा को प्रतिबोध देकर जयसिंहसूरि ने उसे जैन किया, अनेक चावडा राजपूत भी इस अरसे में जैन धर्मानुयायी हुए । देवड के पुत्र झामर ने झालोर में एक लाख सीत्तर हजार टंक द्रव्य खर्चकर श्रीआदिनाथ प्रभु का भव्य जिनप्रासाद बंधवाया, वस्त्र आदि की प्रभावता की तथा अनेक बंदीओ को छुडवाया । झामर के पुत्र देढिया से उसके वंशज देढिया गोत्र से प्रसिद्ध हुए ।

वि.सं. १२५६ में चित्तोड के राऊत वीरचंद चावडा को जयसिंहसूरि ने उपदेश देकर जैन बनाया, उसके वंशज नीसर गोत्र से पहचाने जाते है । कहा जाता है कि राजा वीरदत्त निसंतान था, सूरि के उपदेश से चक्रेश्वरी देवी की आराधना करने से उसे पुत्र की प्राप्ति हुई ।

नलवरगट के राजा रणजीत राठोर को भी इसी तरह पुत्र प्राप्ति हुई और जयसिंहसूरि के उपदेश से उसने भी वि.सं. १२५७ में जैनधर्म स्वीकारा और सूरि के उपदेश से उसने अपने राज्य में अमारी प्रवर्तन की उद्घोषणा भी करायी, उनके वंशज ओसवाल ज्ञाति में मिलकर राठोड गोत्र से प्रसिद्ध हुए ।

वि.सं. १२५८ में मारवाड के अन्तर्गत कोटडा के केशव राठोड ने जयसिंहसूरि के उपदेश से प्रभावित होकर जैनधर्म स्वीकार किया उसके दत्तक पुत्र छाजल पर से उसके वंशज छाजेड गोत्र से पहचाने गये । एक वर्ष में चरित्रनायक कालधर्म को प्राप्त होने से उनके जीवन का यह अंतिम ही प्रसंग गिना जायेगा ।

चरित्रनायक के पट्टकाल में अंचलगच्छ की वल्लभी शाखा में पुण्यतिलकसूरि भी प्रभावक आचार्य हो गये, उन्होंने ने भी अनेक को प्रतिबोध देकर जैन धर्मानुयायी बनाया । वि.सं. १२२१ में बेणप में डोडीआ परमार वंश के राऊ सोमिल को उन्होंने प्रतिबोध दिया सोमिल नाविक का कार्य करने से उसके वंशज वहाणी गोत्र से पहचाने गये । वि.सं. १२२६ में नगरपारकर निवासी उदयपाल नाम के क्षत्रिय को उन्होंने प्रतिबोध दिया, जिसके वंशज बोरीचा गोत्र से पहचाने गये है । वि.सं. १२४४ में हस्तितुंड के राजा वणवीर चौहाण को प्रतिबोध देकर उन्हें जैनधर्मी बनाया । उनके वंशज जासल गोत्र से पहचाने जाते है ।

जयसिंहसूरि के समय में अंचलगच्छीय आचार्य रत्नप्रभसूरि ने नगरपारकर निवासी अजितसिंह परमार को प्रतिबोध देकर जैन बनाया । अजितसिंह अफीम का बहुत नशाबाज था और रात-दिन अफीम घोंटता था इससे लोग उसे घूटका कहते, इससे उसके वंशज 'घूटका' पर से गुटका गोत्र से पहचाने जाते है । वि.सं. १२२८ में अजितसिंह ने नगरपारकर में भव्य जिनालय बंधवाया ।

जयसिंहसूरि ने अनेक प्रदेशो में उग्र विहार करके जैन धर्म की महिमा को बहुत विस्तृत किया । उनके उपदेश से अनेक जिनालय बंधाये, अनेक जिनबिंबो की प्रतिष्ठा हुई उसमें श्रीशत्रुंजयगिरि पर श्रीअद्बुद जिनालय की प्रतिष्ठा मुख्य है । वि.सं. १२४९ में भिन्नमाल के पास के रत्नपुर निवासी, सहस्त्रगणा गांधी गोत्रीय श्रेष्ठी गोविंदशाह ने जयसिंहसूरि के उपदेश से यह जिनालय बंधवाया और उसकी प्रतिष्ठा करायी, श्रीशंत्रुंजय का संघ निकालकर गोविंदशाह ने थाली की प्रभावना की ।

इस जिनालय का जीर्णोद्धार वि.सं. १६८६ में देवगिरीनगर के श्रीमाली श्रेष्ठी धर्मदास ने कल्याणसागरसूरि के उपदेश से करवाया । श्रीअद्बुदजी की प्रतिमा श्रीशत्रुंजयतीर्थ की सबसे बडी प्रतिमा मानी जाती है । उसकी पक्षाल-पूजा वर्ष में एक बार यानि की फागुन वदि ८ के दिन ही होती है । इस तीर्थ में आते यात्रिक इस विराटकाय प्रतिमा के पास उच्च स्वर में कहते है कि ''अद्बुदजी, यात्रा सफल?'' सामने से प्रतिध्वनि सुनाई देती है कि ''सफल'' जो सुनकर यात्रिओ के मन में प्रसन्नता छा जाती है ।

जयसिंहसूरि के उपदेश से वि.सं. १२१७ में कणोनी में श्रेष्ठी जशराज ने भव्य जिनालय बंधवाया और उसकी महोत्सवपूर्वक प्रतिष्ठा करायी थी । पट्टावली में भी प्रतिष्ठाओ से संबंधित महत्वपूर्ण उल्लेख है ।

जयसिंहसूरि ने इतने प्रमाण में ग्रंथ लिखे है, कर्मग्रंथ बृहद् टीका, कम्मपयडी टीका, कर्मग्रंथ विचार टिप्पण, कर्मविपाकसूत्र, ठाणांग टीका, जैनतर्कवार्तिक, न्यायमंजरी टिप्पण, इसमें से एक भी ग्रंथ फिलहाल उपलब्ध नहीं है । अन्य उल्लेख के अनुसार जयसिंहसूरि ने ''युगादिदेव चरित्र'' लिखा । आसप की पुत्री लक्ष्मी और पुत्र आंबड ने उसे भक्ति से लिखवाया था । उक्त ग्रंथ सूचि पर से चरित्रनायक का आगम विषयक ज्ञान कितना महान होगा, इसकी प्रतीती होती है ।

परिचत्र भारत के सारे ही महत्व के केन्द्रो में अप्रतिहत विचरण कर चरित्रनायक ने अंचलगच्छ प्रवर्तक आर्यरसितसूरि के शेष रहे जीवन कार्य पूर्ण किये । उन्होंने अनेक नृपपतियो को प्रतिबोध देकर उन्हें जैनधर्म की ओर मोडा और अमारि प्रवर्तन की उद्घोषणाये करवाकर अनेक जीवो को धर्मबोध प्राप्त करवाया । जैनधर्म का महिमा उन्होंने सर्वत्र विस्तारित किया । अंचलगच्छ के संगठन के लिये तो उन्हें मेरुदण्ड की उपमा दी जा सकती है । आर्यरक्षितसूरि ने जिन आदर्शो और विचारो की नींव डाली थी उसके उपर चरित्रनायक ने भव्य इमारत खडी की । जयसिंह सूरि की अनेक विविध कारकिर्दी ने पश्चिम भारत के सांस्कृतिक इतिहास में उज्वल पृष्ठ जोडा है । उनके उत्कृष्ट चारित्र्य का प्रभाव सिर्फ उनके अनुयायियो तक ही मर्यादित नहीं रहा बल्कि सारे गच्छ भी उसकी असर से अप्रभावित नहीं रह पाये, इस प्रभाव की असर दूरगामी रही ।

वि.सं. १२५८ में इस मेघावी आचार्य का बेणप नगर में ८० वर्ष की उम्र में कालधर्म हुआ तब अचलगच्छ ने मानो अपना शिरछत्र खो दिया और जैन शासन ने एक मजबुत स्तंभ खो दिया हो ऐसे भाव का अनुभव हुआ । 'लक्ष क्षत्रिय प्रतिबोधक' के रुप में जैन इतिहास में वे कभी नहीं भूले जा सकते ।

भवियण कु आधार

हुंडा अवसर्पिणी काल में.....

अवनति के समय में.....

अद्‌भुत, उत्तम, अत्यंत लाभदायक ऐसा जिनशासन तो मिला पर ।

शरीर निर्बल.....मन निर्माल्य.....बुद्धि तर्क से भरी हुई.....

कैसे तैर पायेंगे भवसागर से ?

याद आती है वो वाली पंक्तियाँ शुभवीरविजय की

दुषमकाले जिनबिंब जिनागम

भवियण कुं आधारा.....

आज पंचमकाल में भी तैरना हो तो तैरा जा सकता है और इसके आधार स्तंभ है **जिनागम एवं जिनप्रतिमा !**

जिनप्रतिमा से हम सब सामान्य रुप से परिचित ही है पर जिनागम से हम उतने ही अपरिचित है.....

सर्व जीवो को सत्य का भान करा कर, जिनशासन का रसिक बनाने की एकमात्र भाव दया से तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन कर उसके उदय काल में साधना से केवलज्ञान पाकर..... तारक तीर्थ की स्थापना करते है..... चतुर्विध संघ की रचना करते है..... जगत के जीवो के कल्याण की खातिर देशना का झरना बहाते है.... जिस झरने में स्नान करने वाली प्रत्येक आत्मा पवित्र बन अनेको को पावन करती है ।

ऐसी जिनवाणी का संग्रह वो ही जिनागम है । जिनागमो मे जीव अजीव के सारे रहस्य स्पष्ट करने मे आये है । विश्व की रचना का विस्तार से वर्णन है । जन्म और मरण की समझ बतायी गयी है । सुख व दुःख का स्वरुप व उनके कारणों का विवेचन है । संसार के मायाजाल में जीव कैसे फंसता है और उसमें से कैसे मुक्त हो सकता है, उसकी तत्वज्ञान से भरपूर विचारधारा है ।

आज हमें प्रभु तो नहीं मिले पर प्रभु प्रतिमा को ही साक्षात प्रभु मान भक्तिरस का पान करते है और प्रभुवाणी स्वरुप आगम की पहचान कर ज्ञानरस में पूरे भीगकर जीवन नौका को भवपार करने का पुरुषार्थ करते है,.....

आगम सब मिलकर पैंतालीस है जिनका वर्गीकरण निम्नानुसार करने में आया है :-

११ अंग, १२ उपांग, १०. पयन्ना, ६ छेद, ४ मूल, १ नंदीसूत्र, १ अनुयोग द्वार

पैंतालीस आगमो का संक्षिप्त परिचय

१) **आचारांगसूत्र :-** इस सूत्र में श्रमण निर्ग्रंथो के आचार आदि का विस्तार से वर्णन किया है ।

२) **श्रीसूत्रकृतांग सूत्र :** इस सूत्र में जीव, अजीव वगैरह स्वसिद्धांत एवं परसिद्धांत का वर्णन है । क्रियावादी वगैरह के ३६३ भेदो (पांखडियो) वगैरह का वर्णन है, चरणीसत्तरी की प्ररुपणा करते हुए संयम लेने वाले जीवो को अनुकुल उपसर्ग सहन करने की बात आर्द्रकुमार आदि के दृष्टांत से विस्तार से समझायी है ।

३) **श्रीस्थानांग सूत्र :-** एक से दस तक संख्या वाले जीव, अजीव, नदीओ वगैरह विविध प्रकार पदार्थो का वर्णन क्रमसे अध्ययनो में किया है ।

४) **श्रीसमवायांग सूत्र :** इस सूत्र में एक से लेकर सौ उपरांत जीव, अजीव वगैरह पदार्थो का वर्णन किया है और बारह अंग का संक्षिप्त सार बताया गया है ।

५) **श्रीभगवती सूत्र :** इस सूत्र में चार अनुयोग वगैरह पदार्थो का प्रश्नोत्तर आदि रुप का वर्णन किया है ।

६) **श्रीज्ञातासूत्र :** इस सूत्र में शैलकराजर्षि, द्रोपदी श्राविका वगैरह की कथाओ द्वारा भिन्न-भिन्न तरीके से आत्मिक बोध दिया है ।

७) **श्रीउपासक दशांगसूत्र :** इस सूत्र में प्रभु श्रीमहावीरदेव के दस श्रावको के चरित्र का वर्णन है ।

८) **श्रीअनंतकृत दशांग सूत्र :** इस सूत्र में अनंत तीर्थंकर, गणधर, समलंकृत प्रसंगो के वक्त कृष्ण, गजसुकुमाल, सोमिल ब्राह्मण वगैरह की बाते तथा कृष्ण वासुदेव की राणियों ने तथा श्रेणिकरराजा वगैरह का रानियो ने दीक्षा लेकर किये वर्धमानतप आदि का विस्तार से वर्णन है ।

९) **श्रीअनुत्तरौपपातिक सूत्र :** इस सूत्र में संयम की निर्मल साधना करके अनुत्तर विमानो में गये जालिकुमार, उग्रतपश्चर्या करने वाले श्रीधन्यमुनि वगैरह के चरित्र बताये है ।

१०) **श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्र :** इस सूत्र में पांच आश्रवो की एवं पांच संवरो वगैरह पदार्थो की जानकारी विस्तार से उदाहरणों के साथ कही है ।

११) **श्रीविपाक सूत्र :** इस सूत्र में सुख, दुःख के फलो को भोगने वाले जीवो की कथाओ वगैरह का वर्णन है ।

१२) **श्रीदृष्टिवाद सूत्र :** यह अंग विच्छेद पाया है ।

१२) **श्री औपपातिक सूत्र :** इस सूत्र में महल से महोत्सवपूर्वक प्रभु श्रीमहावीरस्वामी के पास जाकर कोणिक राजा ने विधि से वंदना की, प्रभु की देशना सुनी आदि कथाये और मुनिवरो के तप, सिद्धि के सुख वगैरह पदार्थो का वर्णन किया है ।

१३) **श्रीरायपसेणी सूत्र :** इस सूत्र में केशी गणधर और प्रदेशी राजा के प्रश्नोत्तर आदि तथा सूर्याभदेव के वर्तमान भव का एवं भविष्य के भव का वर्णन किया है ।

१४) **श्रीजीवाभिगम सूत्र :** इस सूत्र में जीव, अजीव वगैरह पदार्थो का वर्णन है ।

१५) **श्रीप्रज्ञापना सूत्र :** इस सूत्र में जीवो की प्रज्ञापना, स्थान वगैरह ३६ पदार्थो का वर्णन चौवीस दंडक में

जमा कर किया है ।

१६) **श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र :** इस सूत्र में सूर्य वगैरह की बाबत का विस्तार से वर्णन किया है ।

१७) **श्रीचंद्रप्रज्ञप्ति सूत्र :** इस सूत्र में चंद्र आदि की बाबत का विस्तार से वर्णन किया है ।

१८) **श्रीजंबूद्वीप प्रज्ञत्ति सूत्र :** इस सूत्र में जंबूद्वीप आदि क्षेत्रो की और श्री ऋषभदेव प्रभु, भरत चक्रवर्ती आदि की हकीकते कही गयी है ।

१९) **श्री कल्पिका उपांग :** इस सूत्र में कोणिक द्वारा किये गये चेडामहाराजा के साथ युद्ध में मरकर नरक में गये हुए श्रेणिक राजा के पुत्र काल वगैरह की तथा श्रेणिक के मरण वगैरह की कथाये कही है ।

२०) **श्रीकल्पवंतसिका उपांग :** इस सूत्र में श्रेणिक के पौत्र पद्मकुमार वगैरह दस जने संयम साधकर एक देव भव करके मोक्ष में जायेंगे उसका वर्णन किया है ।

२१) **श्रीपुष्पिका उपांग :** इस सूत्र में चंद्र,सूर्य वगैरह के पूर्वभव आदि का वर्णन किया है ।

२२) **श्रीपुष्पचूलिका उपांग :** इस सूत्र में श्रीदेवी वगैरह दस देवियो के पिछले भव वगैरह की जानकारी दी गयी है ।

२३) **श्रीवन्हिदशा उपांग :** इस सूत्र में बलदेव के बारह पुत्रो की दीक्षा की कथाये और उनके पूर्वभव आदि की कथाये कही है ।

२४) **२४ से २९ छः पयन्ना** (कुल दस पयन्ना है) चऊशरण पयन्ना, आतुर प्रत्याख्यान पयन्ना, भक्ति परिज्ञा पयन्ना, संस्तारक पयन्न, महाप्रत्याख्यान पयन्ना, मरण समाधि पयन्ना, इन छःपयन्नओ में अंतिम आराधना आदि का अधिकार अलग-अलग स्वरुप में संक्षिप्त में या विस्तार से वर्णन करते हुए प्रसंग के अनुरुप अनेक जरुरी कथाये भी बतायी है ।

३०) **श्री तंदुल वेयालिय पयन्ना :** इस सूत्र में गर्भ का कालमान, देह रचना एवं युगलिक पुरुष आदि का वर्णन करके देह की ममता को त्यागने का उपदेश दिया है ।

३१) **श्रीगच्छाचार पयन्ना :** इस सूत्र में मुनिवरों के आचार आदि की कथाये कही है ।

३२) **श्रीगणिविज्जा पयन्ना :-** इस सूत्र में दिवस बल वगैरह के नव बलो के बारे में ज्योतिष की हकीकत वगैरह कथाये बतायी गयी है ।

३३) **श्रीदेवेन्द्र स्तव पयन्ना :** इस सूत्र में प्रभु की स्तुति करने की अवसर पर पूछे गये प्रश्नो के उत्तरो के रुप में उर्ध्वलोक आदि की कथाये बतायी है ।

३४) **श्री आवश्यक सूत्र :** इस सूत्र में छः आवश्यको का वर्णन है ।

३५) **श्री दशवैकालिक सूत्र :** इस सूत्र में मुनिवरो के आचार का वर्णन है ।

३६) **श्री ओघनिर्यक्ति सूत्र :** इस सूत्र में मुनिवरो को धर्म आराधना में मददगार आहार आदि का विस्तार से वर्णन है ।

३७) **श्रीउत्तराध्ययन सूत्र :** इस सूत्र में श्रीचतुर्विध संघ को मोक्षमार्ग की आराधन कराने वाले विनय आदि का

तथा वैराग्य,शील,तपश्चर्या, कर्म, जीव आदि तत्व वगैरह पदार्थो के स्वरुप को विस्तार से समझाया गया है ।

३८) **श्रीनंदीसूत्र :** इस सूत्र मे पाँच ज्ञान वगैरह का तथा अंत में बारह अंगो का भी संक्षिप्त में वर्णन किया है ।

३९) **श्री अनुयोगद्वार सूत्र :** इस सूत्र में उपक्रम आदि चार प्रकार के अनुयोग वगैरह पदार्थो का स्पष्ट वर्णन किया है..... उपक्रम, निक्षेप,अनुगम एवं नय ऐसे चार दरवाजो का विस्तार से वर्णन किया है ।

४० से ४५ श्री छः छेद सूत्र : इन छः छेद सूत्रो में प्रायश्चित, पांच व्यवहार एवं मुनिवरो के आचार आदि का वर्णन विस्तार से किया है ।

उपरोक्त परिचय कराये गये पैंतालीस आगम सत्य है, अनुत्तर है, केवली श्रीतीर्थकर भगवंतो के कहे हुए है ।

आगम प्रतिपूर्ण तथा न्यायमार्ग के अनुशरण करने वाले है, सर्वथा शुद्ध है । आत्मा को तीनो शल्य से मुक्त बनाने वाले है । ये आगम मुक्तिमार्ग की आराधना में असाधारणरुप से सहायक है । सर्वज्ञकथित आगमो में कहीं पर भी शंका को स्थान नहीं है । आगम का सात्विक आराधक निश्चिय रुप से त्रिविध दुःखो का नाश कर सिद्धिपद को पाता है.... इसीलिये आगम निवार्णरुपी नगर तक पहुँचने के मार्गरुप कहलाते है ।

इन आगमो पर सम्पूर्ण श्रद्धा रख संदेहरहित बन यथाशक्ति जीवन में उतार आत्मकल्याण साधने प्रयत्नशील बनते है ।